महानगर के बीच

डा. अजय प्रसन्न

महानगर के बीच

(डा० अजय प्रसून की हिन्दी ग़ज़लें)

—: रचनाकार :—

डॉ अजय प्रसून

७७, सरोज निकेतन

हेल्थ स्क्वायर लखनऊ–३

ममता प्रसून प्रकाशन लखनऊ

सर्वाधिकार सुरक्षित
श्रीमती ममता प्रसून द्विवेदी
लखनऊ

卐

पहला संस्करण १९८४

मूल्य १०/=

卐

—: प्रकाशक :—

ममता प्रसून प्रकाशन
७७, सरोज निकेतन
हेल्थ स्क्वायर लखनऊ-३

—: मुद्रक :—
काका प्रिंटिंग प्रेस, १२५, रमई काका लेन, मकबूलगंज, लखनऊ
दूरभाष : ३३१५३

अपनी बात

वर्तमान समय में हिन्दी काव्य क्षेत्र में हिन्दी ग़ज़ल एक सशक्त विधा के रूप में उभरकर सामने आई है। हिन्दी ग़ज़लें वैसे तो काफी समय पूर्व से कही जाती रही हैं, लेकिन यह सर्वमान्य तथ्य है कि इस विधा को स्व० दुष्यन्त कुमार ने पल्लवित और पुष्पित किया है एवं उसे शीर्ष तक पहुंचाया भी है। साथ ही आज के अनेक रचनाकार या अधिकांश रचनाकार हिन्दी ग़ज़लें कह रहे हैं और वे सफल भी हैं। हिन्दी ग़ज़लों के संदर्भ में मेरी दृष्टि में वर्तमान समय ही धनी माना जायेगा, क्योंकि बड़े ही अनुपम प्रयोग इस क्षेत्र में किये जा रहे हैं।

आज की हिन्दी ग़ज़लें एक तरफ जहाँ समस्याओं को उठा रही हैं वहीं उनका समाधान भी दे रही हैं। मानव-मन में व्याप्त कुंठा एवं संत्रास की जड़ों को आज की ग़ज़लें उखाड़ फेंकने को कृत संकल्प हैं। इनमें ताजगी भी है और साथ ही मानवीय चेतना को जगाने की शक्ति भी निहित है। जहाँ आज की हिन्दी ग़ज़लों में मन की संवेदनाओं को उभारने की क्षमता विद्यमान है वहीं पर मानव-मन के अधूरे स्वप्नों को पूरा करने का साहस भी।

मेरी व्यक्तिगत राय में यदि आज की ग़ज़लों को अनागत के साथ जोड़ा जाये एवं कठिन वर्तमान जीते हुए एक स्वर्णिम भविष्य की कल्पना को साकार करते हुए आज के नये रचनाकार हिन्दी ग़ज़लों की दिशा में प्रयास करें तो निश्चित रूप से एक युगानुरूप कार्य होगा।

अंत में अपने एवं अपनी ग़ज़लों के संम्बंध में इतना ही कहना चाहूँगा :-

वक़्त की मार का असर क्या हो,
ज़िंदगी आबनूस है मेरी।
ज़ुल्म की आग में नहाई हुई,
हर ग़ज़ल इक जुलूस है मेरी।
खींचकर फेंक दो हलक़ से तुम,
गर ज़ुबां चापलूस है मेरी।

डॉ० अजय प्रसून
लखनऊ

शुभ कामनायें

डॉ॰ अजय प्रसून रचित ग़ज़लों का संग्रह देखा। कवि की प्रतिभा अनेक पंक्तियों में झलकती हैं। 'यह महानगरी तनावों में जड़ी है, ग़ज़ल अच्छी लगी; अन्य रचनाओं में कई पंक्तियाँ सुँदर हैं। कवि के प्रति मेरी शुभकामनायें अर्पित हैं।

अमृत लाल नागर
चौक, लखनऊ

भावना के इन शिलालेखों में मानव हृदय की बिजली सी संवेदना सर्वत्र तरंगायित है, इसीलिए प्रसून की काव्य पक्तियों में एक सप्राणता है, जीवन्तता है, मर्म को छू लेने की कसक है, मानवता को हुलास देने वाली सहानुभूति है। उनके जीवन की कविता के ये पल जो ग़ज़लों के शिलालेख में मूर्त हो उठे हैं, आपको आकृष्ट करेंगे, द्रवित करेंगे, संवेदनशील धरातल पर ला खड़ा करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

जीवन के बढ़ते पग और अनुभव प्रसून के काव्य को और अतल गहराइयां देंगे, इसमें मुझे संदेह नहीं। वे एक उत्कृष्ट रचनाकार हैं, यह इन रचनाओं से सिद्ध हो चुका है।

रमेश चन्द्र दुबे
४३, राजभवन कालोनी, लखनऊ

ये महानगर, यह भीड़! ये इंसान, इस सदी की यह त्रासदी! नयी शताब्दि या सहस्राब्दि के आगमन के सुनहले सपनों के बीच निपट निराशा और कुण्ठा का यह घटाटोप वातावरण! आज के निर्मम परिवेश पर लिखने को तो बहुतों ने लिखा है। लेकिन जैसा मासूमियत भरा पैनापन और निर्दोष तीखापन डॉ॰ अजय प्रसून की ग़ज़लों में मिलता है, शायद ही किसी की ग़ज़लों में पाया गया हो। महानगरीय अभिशापों और अन्तर्विरोधों का जीवन्त चित्रण करने वाले युवा सुकवि प्रसून के ग़ज़ल संग्रह 'महानगर के बीच' की अत्यन्त उदबोधक और विचारोत्तेजक ग़ज़लें प्रस्तुत संकलन में संग्रहीत हैं। विश्वास है कि यह कृति अपनी सशक्त अभिव्यक्तियों के कारण अन्यतम सफलता तथा अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त करेगी। मेरी कामना है कि यह रचना हिन्दी जगत् की काव्य यात्रा में एक निर्णायक मोड़ का संदेशी बने।

रामऋषि शुक्ल
सम्पादक–मानवी, लखनऊ

ग़ज़ल	क्रम

भूखे नंगे रहकर सुबहो शाम……	६
इस समय जो लोग……	७
क्यों ये महानगर रच डाले……	७
कांटों के बीच में……	८
परेशान अब नहीं लोग……	९
ये महानगरी तनावों में……	१०
यहाँ नहीं तो कहीं और……	११
नई कोपलों का हवन……	१२
खो गया जाने कहाँ……	१३
अब गुलाबों के तनो से……	१४
व्यक्ति की भावना अजामिल……	१५
धूप में जलने लगी है……	१५
कोहरा है बर्फ का वातावरण……	१६
आपकी पीठ पर……	१६
अस्थियां आकाश तक……	१७
पर्वत न होंगे और ये सागर……	१८
साँसो में आग है……	१८
जो आग में जलकर……	१९
आप से हर आदमी……	२०
वृक्ष खा गये फल……	२०
आपके व्यक्तित्व से ज्यादा……	२१
महानगर की चकाचौंध में……	२१
नहीं दो बूंद जिनके पास……	२२
देखते हैं आँख भर……	२२
कभी-कभी दिखते गुलाब से……	२३
चेहरों पर लिख दीं असमय ही……	२४
जिस तरह हारे कभी हम……	२५
हम कभी बेजुबान होते हैं……	२६
तुम आदमी जरूर हो……	२६
अभावों ने सिखाया है……	२७
क्या कहें ज्वालामुखी……	२७
छेद देंगे वक्ष ये……	२८
कही इस दौर में……	२९
उदासी आँख में भर लो……	३०
सत्य की अभिव्यक्ति से …	३१
आगे जाकर खड़े हो गये……	३१
होंठों पे आये मंद–मंद……	३२

(१)

भूखे नंगे रहकर सुबहो शाम बिके हम लोग,
इतने बड़े शहर में सस्ते दाम बिके हम लोग !

तेज वाहनों सी गति वाले जीवन की जय हो,
राजमार्गों से करते संग्राम बिके हम लोग !

बरबादी के कठिन मार्ग तय करते चले गये,
सोचा नहीं कि क्या होगा परिणाम बिके हम लोग !

मन की आग पीढ़ियाँ आने वाली देखेंगी,
ताकतवर को करते हुए प्रणाम बिके हम लोग !

अंधकार के बीच न कोई किरण दिखाई दे,
तन के साँचे में ढलकर क्यों राम बिके हम लोग !

कहा किसी ने कभी न कुछ चुप होकर बैठ गये,
दुनिया रही देखती आठों याम बिके हम लोग !

वह इमारतें जो कल परसों तक ढह जायेंगी,
उन इमारतों में करते विश्राम बिके हम लोग !

बिकना ही था बिक जाते हम कोई बात न थी,
दुःख तो इसका है प्रसून नाकाम बिके हम लोग !

卐

(२)

इस समय जो लोग अपने सामने हैं,
भेड़िये की राह तकते मेमने हैं !

वह भला बट-वृक्ष कैसे बन सकेंगे,
खोखले जिनके अभी से ही तने हैं !

ये अभी ढह जायेंगे क्षणमात्र में ही,
ये भवन कमजोर गारे से बने हैं !

卐

(३)

क्यों ये महानगर रच डाले तुमने मन के गाँवों में,
मन की व्यथा बिवाई बनकर फूट पड़ी है पाँवों में !

जहाँ महकते थे आमों के बौर वहाँ पर भवन खड़े,
तथा कथित संपन्न लोग अब जियें विपन्न अभावों में !

भेदभाव की खड़ी कतारें बतलाओ अब कहाँ नहीं,
कटुता की नदिया में बहते जायें तेज बहावों में !

कोई भी क्या कर सकता है इसकी नहीं दवा कोई,
शांति भवन में रहने वाले जीते बड़े तनावों में !

भरी सभा के बीच कहेंगे कहने में कुछ दोष नहीं,
बड़े बेहया लोग मिले हैं इन बेशर्म सभाओं में !

नहीं यहाँ इंसान एक भी महापुरुष की बात कहाँ,
इन्हें अगर खोजो प्रसून तो बस प्राचीन कथाओं में !

卐

काँटों के बीच में कभी कीलों के बीच में,
हम भी रहे हैं क्रूर कबीलों के बीच में !

गरदन लहू-लुहान है तीरों की नोक से,
जीवन गुजर रहा ये भीलों के बीच में !

देखा कहीं जो मांस तो उड़ते चले गये,
विश्वास कीजिये ज़रा चीलों के बीच में !

दावाग्नि जंगलों की पिये जी लिये कभी,
हिम बन के जी लिये कभी झीलों के बीच में !

आलोचना हुई तो मिली वाह-वाह भी,
बीतेगी जिंदगी ये दलीलों के बीच में !

हमने जवाब ईंट का पत्थर से ही दिया,
शामिल रहे हैं यार वकीलों के बीच में !

बरसों हताश मन लिये भटके प्रसून हम,
पद चिह्न देख लीजिये मीलों के बीच में !

परेशान अब नहीं लोग कोलाहल से होते हैं,
और न ही भयभीत किसी दावानल से होते हैं !

पी लेते हैं खून किसी का कई लोग मिल जुलकर,
महानगर में इसी तरह अक्सर जलसे होते हैं !

डर लगता है कुछ कहने में फिर भी कुछ कह दूँ,
बुद्धिजीवियों में शतप्रतिशत पागल से होते हैं !

ताँबे के, पीतल के, अथवा सोने या चाँदी के,
हर पनघट पर विविध प्रकारों के कलशे होते हैं !

अगर नाप सकते हो नापो चरागाह जीवन के,
वन्य प्राणियों के विशालतम जंगल से होते हैं !

इसी प्रकृति के रूप भयानक भी कोमलतम भी हैं,
व्यंग्य इसी के तीखे और हलाहल से होते हैं !

बात अलग है मेरी गज़लें भरी तनावों में हो,
लेकिन मेरे गीत आपके आँचल से होते हैं !

ये महानगरी तनावों में जड़ी है,
सिरफिरे आकाश के नीचे खड़ी है !

चोट कुछ आई तो होगी बोल दर्पण,
जोर से फेंकी किसी ने कंकड़ी है !

यातनाओं का दिया जलता रहेगा,
क्योंकि हाथों में नियति की फुलझड़ी है!

इस तरफ है एक आलीशान बँगला,
राजपथ के उस तरफ वह झोपड़ी है !

किस तरह भर लें भुजाओं में बता मन,
रोशनी भरती हिरन सी चौकड़ी है !

एक पत्थर पर टिकाकर शीश अपना,
भावना साकार होकर रो पड़ी है !

हीन भावों से न देखें आप इसको,
आपके व्यक्तित्व से ज्यादा बड़ी है !

卐

यहाँ नहीं तो कहीं और दोपहर वालों,
तलाश जारी रहे धूप की शहर वालों !

हजार बार उजालों का नाम लेते हो,
नजर बचा के चलो दोगली नजर वालों !

भले हों सूत के रेशम के या कि रस्मों के,
कफन उतार चलो दूर के सफर वालों !

उठा लो पाँव हथेली से और चटखा दो,
इसी तरह से जियो चिपचिपे अधर वालों!

बड़े भले हो, भलों की जुबान छूते हो,
ये आइने में जरा शक्ल तो उतरवा लो !

यहाँ घरों में नहीं और बस्तियों में नहीं,
उगलना और कहीं ये जहर, जहर वालों !

वहीं नदी है तनावों की जहाँ बैठे हो,
चलो वो छोड़ो जगह ओ थकी लहरवालों !

卐

नई कोपलों का हवन हो रहा है,
मसानों के शव सा चमन हो रहा है !

स्वयं देखिये कैसा वातावरण है,
हमें तो कसम से वमन हो रहा है !

हैं कटु से भी कटुतर नये गीत मन के,
मधुर भावना का दमन हो रहा है !

कुटी से महल तक सलिल से अनल तक,
व्यथा की कथा का श्रवण हो रहा है !

किसी का लहू है अधर पर किसी के,
किसी की तृषा का शमन हो रहा है !

गये बीते हैं जो कि पशु से भी ज्यादा,
उन्हीं के कथन का चलन हो रहा है !

नहीं शांति की बात करता है कोई,
समर-आयुधों का सृजन हो रहा है !

卐

खो गया जाने कहाँ मन का तथागत है,
रोशनी की ढ़ह चली कमजोर हर छत है !

सभ्यता इतनी पहन ली आदमी ने है,
अब तो सर से पाँव तक मानव निरावृत है !

आग से जो खेलना चाहें करें सूचित,
उन सभी का आज मेरे द्वार स्वागत है !

हो अगर कोई शिकायत आप बतलायें,
हर शिकायत दूर करने की हमें लत है !

काटकर टाँगे किसी को पंगु कर डाले,
और बैसाखी टिका दें क्या शिकायत है ?

एक ठहरी झील होकर सोचती आँखें,
थरथरी पैदा करें आगत विगत नत है !

आपको अंधा किया बहरा बना दें हम,
है गलत कुछ भी नहीं ये आदमियत है !

卐

(१०)

अब गुलाबों के तनों से दिन नहीं भाते,
आजकल ये आइनों से दिन नहीं भाते !

नोच डालो फूल मौसम के न महकेंगे,
आह भरते मधुवनों से दिन नहीं भाते !

सावधानी से चलो तुमको कुचल देंगे,
तेज गति के वाहनों से दिन नहीं भाते !

भोग जूठन से लगाया हो गया व्रत भंग,
शेष जूठे बर्तनों से दिन नहीं भाते !

डस न लें हमको कहीं ये वासुकी के फन,
दोस्त ! जहरीले फनों से दिन नहीं भाते!

फोड़ डालो पात्र कोशिश व्यर्थ करनी है,
गाय के सूखे थनों से दिन नहीं भाते !

प्यार भी जिनका हमें बस खीझ देता है,
लिजलिजाते चुंबनों से दिन नहीं भाते !

(११)

व्यक्ति की भावना अजामिल है,
सामयिक राजनीति शामिल है !

मेरे आकाश की हथेली में,
कल के अभिशाप का बड़ा तिल है !

जहाँ भी हाथ डालता हूं मैं,
वहीं पर एक साँप का बिल है

भीड़ का सोचना सही निकला,
भीड़ के बीच एक कातिल है !

(१२)

धूप में जलने लगी है दोपहर ये,
पेड़ के नीचे कहीं जाती ठहर ये !

यत्न कोई तो करो नीचे उतारो,
चढ़ गई टूटी हुई दीवार पर ये !

और काफी कुछ मिलेगा देखने को,
देखते जाओ तनावों का शहर ये !

आ रहीं हलकी कराहें खिड़कियों से,
रोगियों सा दिख रहा बीमार घर ये !

भर गया सूखी शिराओं में उबलकर,
सूर्य का उगला हुआ जूठा जहर ये!

(१३)

कोहरा है बर्फ का वातावरण है,
कर रही धरती जहाँ नभ का वरण है !

एक दहशत सी हवाओं में घुली है,
और इनके बीच जीवन का चरण है !

आह ! क्या साहित्य की भी दुर्दशा है,
वेश्या सा कर रहा कवि आचरण है !

क्रूर मछुआरा समय का मुक्तभोगी,
कर रहा क्यों भावनाओं का हरण है !

(१४)

आप की पीठ पर लदी है ये,
भागती जा रही सदी है ये !

आप ही पी गई सलिल सारा,
कर्मनाशा कोई नदी है ये !

भीड़ को नग्न कर दिया जिसने,
कलयुगी एक द्रौपदी है ये,

आप भोगें इसे खुशी होगी,
आपको हमने सौंप दी है ये !

है किसी आधुनिक ग़ज़ल जैसी,
पर न तुलसी की चौपदी है ये !

(१५)

अस्थियाँ आकाश तक बेशक उछालेगा किसी दिन,
वक्त बनकर भील हमको मार डालेगा किसी दिन !

खून पी लेगा हमारा आपका यह सत्य है,
माँस तन का चाकुओं से फाड़ खा लेगा किसी दिन !

रक्तजीवी और आदमखोर इसका नाम होगा,
आदमीयत पेट में अपने समा लेगा किसी दिन !

भावनायें और जीने की सभी संभावनायें,
स्वयं के ही बीच जबड़ों के दबा लेगा किसी दिन !

नाम जीवन का मिटा कर आपके हस्ताक्षर से,
हर वसीयत नाम अपने ही करा लेगा किसी दिन !

पूछने पर यह कि ऐसा क्यों किया वह मौन रहकर,
हाथ में गंगाजली अपने उठा लेगा किसी दिन !

और ऐसा भी घटेगा देख लेना ओ विधाता,
वक्त वहशी मांस अपना ही चबा लेगा किसी दिन !

(१६)

पर्वत न होगे और ये सागर नहीं होगे,
नदियों के शिलालेख के अक्षर नहीं होंगे!

सब वक्त की चपेट में आ जायेंगे सहसा,
हँसती हुई सुबह के धुले पर नहीं होंगे।

कहना है और क्या यही कहना ही शेष है,
देहरी नहीं होगी हमारे घर नहीं होंगे!

कलयुग न जायेगा कभी ये मान लीजिये,
अब मंदिरों में राम या शंकर नहीं होंगे!

सूरज भी लिये धूप कहीं भाग जायेगा,
रातें न होगीं दिन के खुले कर नहीं होंगे!

कहने को ये प्रसून महक बाँटता रहे,
लेकिन ये छंद-गीत-ग़ज़ल स्वर नहीं होंगे!

(१७)

साँसों में आग है अरे सीने में आग है,
इस आदमी के खून-पसीने में आग है!

तुम स्वर्ग का वरण करो सुख भोग लो तमाम,
दो पल वहाँ की जिंदगी जीने में आग है!

मेरी ग़ज़ल को तुमने कहा ये नगीना है,
सच है प्रसून ऐसे नगीने में आग है!

(१८)

जो आग में जलकर मेरी तकदीर बनी है,
वह बेमिशाल चीज तो हीरे की कनी है!

ये देह की नौका भले ले जाओ कहीं तुम,
मेरी ही देह के अनाम घाट उतरनी है!

ये राजमार्ग है वही जिससे अभी होकर,
किसी मील के पत्थर की बारात गुजरनी है!

यह जिंदगी जो हम जियें सपनों का भ्रम लिए,
समझो किसी गुलाब की टूटी हुई टहनी है!

खुशियों से कह दो अब किसी हाथ थाम लें,
अपनी खुशी की नींव तो कुछ रोज में ढ़हनी है!

जिसको कि तुमने नाम दिया, कालजयी! दोस्त,
वह प्यास दूसरे की नही प्यास तो अपनी है!

जो व्योम के धुँयें मे पली और बड़ी हुई,
मेरी ग़ज़ल मसान की माटी की जनी है!

(१९)

आप से हर आदमी कटने लगा है,
कुछ तनावों में शहर बँटने लगा है !

दूरियों की बात कैसे तय करे वो,
धूप में जलता समय घटने लगा है !

इस हथेली पर दहकती आग धर दो,
एक आँचल आयु का फटने लगा है !

खींच दो रेखा धुँयें की फिर गगन में,
वह नियति का नाम क्यों रटने लगा है !

बात कहने की नही है राजपथ से,
मील का पत्थर स्वयं हटने लगा है !

देखता हूँ वह अजायब घर कि जिसमें,
सीकचों से हर कोई सटने लगा है !

(२०)

वृक्ष खा गये फल अब जंगल क्या करें,
फैला दावानल ये आँचल क्या करें !

जाने क्या हो गया आज इस नदिया को,
नदी पी गई जल बादल दल क्या करें !

बुद्धिजीवियों की बस्ती में सन्नाटा,
बुद्धि चरे जंगल ये पागल क्या करें ?

(२१)

आपके व्यक्तित्व से ज्यादा कहीं ऊँचा शहर,
लील जायेगा समूचा आपको भूखा शहर !

माँस बेटे का निगलती माँ, पिता पीता लहू,
क्या बतायें आपको कैसा पड़ा सूखा, शहर !

भागते हैं लोग पाने को शरण, लेकिन यहाँ,
हो गया पल में दहकता आग का कूँचा शहर !

देखते जाओ बिकेंगे भावना की हाट में,
आत्मा के छंद, मन के गीत ले लेगा शहर !

(२२)

महानगर की चकाचौंध में आम आदमी बढ़ता है,
धीरे-धीरे अपराधों के शीर्ष शिखर पर चढ़ता है !

क्यों न भला वह कामुक हो क्यों लीन न हो व्यभिचार में,
रामायण का कवर चढ़ाकर कोकशास्त्र जो पढ़ता है !

अंतर केवल इतना ही है पढ़े-लिखे में, अनपढ़ में,
पढ़ा-लिखा सीमा के बाहर अनपढ़ भीतर रहता है !

बहरी दुनिया क्या समझेगी गूंगे जीवन की पीड़ा,
युग के विष को पीने वाला शूल हृदय में मढ़ता है !

(२३)

नहीं दो बूँद जिनके पास वे लेकर प्रलय निकले,
अँधेरी घाटियों के बीच से जैसे मलय निकले !

किसी के खून से तर हाथ मेरे खून के प्यासे,
किसी की आँख में काँटे मेरे खिलते समय निकले !

जो थे मेरे युवा सपने वो मेरी ही खिलाफत में,
जिन्हें मैं द्रोण समझा था बड़े निर्मल हृदय निकले !

किसी को देवता कहकर विषैली भावनाओं के,
किसी ने हार पहनाये जो साँपों के वलय निकले !

उगेंगी रश्मियाँ रवि की कली हर महमहायेगी,
प्रसूनों की महक होगी जिधर से भी अजय निकले !

卐

(२४)

देखता हूँ आँख भर ज्वालामुखी फटने को है,
सो गये हैं हिम-शिखर ज्वालामुखी फटने को है !

पंगु होकर जी रही पीढ़ी समूची आज की,
सी लिये हमने अधर ज्वालामुखी फटने को है !

राह भूले और अपने आप में फूले हुए,
किस तरह जायेंगे घर ज्वालामुखी फटने को है !

मंच के अनुगामियों मत मंच को गंदा करो,
देख लेना मंच पर ज्वालामुखी फटने को है !

卐

(२५)

कभी-कभी दिखते गुलाब से कंचन-रजत हीर से चेहरे,
राजमार्ग पर कभी-कभी तो दिख जाते फकीर से चेहरे !

राजहंस उड़ गये न जाने किधर न कोई देख सका,
मानसरोवर में एकाकी ठहरे हुए नीर से चेहरे !

गीत कभी मीरा बन जाते छंद कभी तुलसी होते हैं,
ऐसी चितन की सामग्री दे जाते कबीर से चेहरे !

कहीं न कोई हलचल कोई आंदोलन भी कहीं नहीं,
किंतु सामने गुजर रहे हैं गालिब या कि मीर से चेहरे !

कहीं न दावानल दिखता है कहीं न ज्वालामुखी फटा,
देख रहा हूँ अग्निबाण से निकले हुए तीर से चेहरे !

भयाक्रान्त मन सन्नाटो के बीच हँसी क्यों बोयेगा,
लावारिस बाँसों के जंगल में बहते समीर से चेहरे !

शायद ही कोई ऐसा हो जो कि सलिल में स्नान करे,
क्षीर सिधु में सभी नहाते लगते श्वेत क्षीर से चेहरे !

कालचक्र भी मिटा न पायेगा ऐसे हस्ताक्षर को,
पढ़ लेना इतिहास मिलेंगे सोने की लकीर से चेहरे !

किस प्रसून की महक छीन ले किस प्रसून पर वार करें,
कुछ ऐसे ही आयोजन में लगते हैं अधीर से चेहरे !

卐

चेहरों पर लिख दीं असमय ही जाने क्यों अकाल की ग़ज़लें,
वैसे लोग लिखा करते हैं कंचन-रजत-थाल की ग़ज़लें !

इस मौसम ने जाने कैसी आग लगा दी है जंगल में,
धू-धू कर जल उठीं अकारण क्वाँरी हरी डाल की ग़ज़लें !

आंदोलित हो उठीं कंकड़ी मात्र एक ही फेंकी थी,
किसी गाँव के एक किनारे ठहरे हुए ताल की ग़ज़लें !

चाहे जैसे चलो आप ही आप पता चल ही जायेगा,
दुनिया तो पढ़ ही लेती है बहकी हुई चाल की ग़ज़लें !

लोग सोचते रहे कभी तो प्यास बुझेगी ही प्राणों की,
लूट लिया इन बंजारों ने मेघों के रूमाल की ग़ज़लें !

फिर बहेलिये ने चिड़ियों के एक झुंड को कैद किया,
फिर ये चिड़ियाँ उड़ा ले गईं भ्रम के बड़े जाल की ग़ज़लें !

केवल आश्वासन ही देने पर नतमस्तक हो जाते हैं,
सुन लेते हैं लोग कहें क्या कुछ ऐसी कमाल की ग़ज़लें !

सदियों तक गायी जायेंगी और ताजगी बाँटेंगी ये,
अम्बर को छू लिया जिन्होंने हैं ऐसी मशाल की ग़ज़लें !

आगत-विगत सभी कुछ धुँधला था प्रसून क्या बात हुई,
एक नया आकाश दे गईं मन को नये साल की ग़ज़लें !

जिस तरह हारे कभी हम इस तरह हारे न थे,
थे निहत्थे और छाती पर कवच धारे न थे !

हमने माना भूख से हम बिलबिलाते ही रहे,
क्या हमारे पास जिंदाबाद के नारे न थे !

बस धुआँ था हर तरफ इसके सिवा कुछ भी न था,
जो दहकते आज मन में कल वो अंगारे न थे !

हम अकेले थे अकेले ही सदा लड़ते रहे,
पर कभी भी इस तरह हम लोग मन मारे न थे !

यह समर जिसमें कि सम्मुख शत्रु कोई भी न था,
सिर्फ हम थे आप थे आकाश में तारे न थे !

सभ्यता के आइने लेकर शहर की भीड़ में थे,
और लोगों की तरह हम मात्र बंजारे न थे !

इस समर की सूचना किस भाँति हम देते किसे,
आप के या फिर हमारे पास हरकारे न थे !

(२८)

हम कभी बेजुबान होते हैं हम कभी बदगुमान होते हैं,
खुशनुमा भोर की किरन वाले रोज किस्से बयान होते है !

हम भी यशकीर्ति की सुधा पीते हम भी जनभावनाओं में जीते,
जिंदगी आज खुल के कह दे तू लोग कैसे महान होते हैं !

आज कहता हूँ प्राणधन प्यारे भीगी पलकों के सुख-सपन क्वाँरे,
तेरी आँखों की धूप में सिककर शेर मेरे जवान होते हैं !

चाँदनी में नहा के आओ भले हमको तुम लाख आजमाओ भले,
एक दिन जान जाओगे यह भी नयन कैसे कमान होते हैं !

शब्द सुकुमार भी तो होते हैं शब्द तलवार भी तो होते हैं,
और भी मूल्यवान हो जाते शब्द जब अर्थवान होते हैं !

卐

(२९)

तुम आदमी जरूर हो इंसान तो नहीं,
सच कह रहा हूँ मैं गलत अनुमान तो नहीं !

जो गलतियाँ हों कर रहे उनको सुधार लो,
आयेगा टोकने तुम्हें भगवान तो नहीं !

साँसें भी ले रहे हो साँस तोड़ते भी हो,
साँसों के बीच में फँसे हैं प्राण तो नहीं !

गरदन झुकाओगे तो कुचल दी ही जायेगी,
ये जिंदगी जीना बड़ा आसान तो नहीं !

卐

(३०)

अभावों ने सिखाया है करें भगवान की बातें,
तनावों ने सिखाया है करें ईमान की बातें !

हमारी ही तरह इनके भी खूनी दाँत हैं सारे,
करें अब पशु बनैले आज के इंसान की बातें !

हयादारों ने थोड़ी बेहयाई भी दिखाई है,
शुरू कर दी इन्होंने भी हया के दान की बातें !

किसी अंधी गुफा में खो गया है, खोजना होगा,
करें मन खोलकर हम सत्य-अनुसंधान की बातें !

नहीं जब और कोई भी विषय है बात करने का,
करें हम लोग अपने आप के सम्मान की बातें !

卐

(३१)

क्या कहें ज्वालामुखी आबाद सा है,
ये शहर क्यों जंगलों की आग सा है !

हो गया कैसे अचानक क्या कहें हम,
देखते ही देखते ये हादसा है !

एक पागल की तरह सब देख सुन कर,
बुद्धिजीवी आदमी खुलकर हँसा है !

卐

छेद देंगे वक्ष ये तीरों–कमानों से,
माँगिये मत न्याय वहशी बद्‌जबानों से !

कोर्निश–आदाब या फिर जी हुज़ूरी के,
हम नहीं अभ्यस्त कह दो हुक्मरानों से !

मौसमों के साथ जो बदलें उसूलों को,
वे हमें बहलायें मत मीठे बयानों से !

हम फ़कीरी में भी मस्ती में गुजारेंगे,
चौंधियायेंगी न ये आंखें खजानों से !

आग बरसायेंगी ये ज्वालामुखी साँसे,
क्योंकि हैं ऊँचे इरादे आसमानों से !

वे हमारे भाग्य के निर्णायकों में हैं,
छूटकर आये हैं कल जो कैदखानों से !

वायु में आश्वासनों के पुल रचा करके,
ये तबाही देखते हैं वायुयानों से !

गरदनें ये झुक नहीं सकतीं मसीहाओं,
बाँध दो तुम चाहे तोपों के दहानों से !

जो अजय था जो अजय है उसकी जय होगी,
तुम प्रसून इतना तो कह दो बागवानों से !

✦ 卐 ✦

कही इस दौर में हमने भी हैं कुछ राज़ की ग़ज़लें,
बहुत ही ध्यान से सुनना नये अंदाज की ग़ज़लें !

मुग़ल सम्राट ने कटवा दिये वे कर करीने से,
रची थीं जिन करों ने आगरे के ताज की ग़ज़लें !

इन्हें बस लूट सकते हो इन्हें तुम क्या खरीदोगे,
कि नीलम से भी मँहगी हैं कुँवारी लाज की ग़ज़लें!

छुरी से तेज पैनी धार वाली तिलमिला दें जो,
सुनोगे तो कहोगे हैं किसी जाँबाज़ की ग़ज़लें !

कभी मेहनतकशों के हाथ की रेखाओं में पढ़ना,
नये तेवर, नये रंग-रूप की, स्वर-साज़ की ग़ज़लें!

भविष्यत की कथा जिनमें विगत की भी व्यथा जिनमें,
टिकीं श्रमिकों के कंधों पर वतन पर नाज़ की ग़ज़लें!

जिन्हें इतिहास दुहराये अजय आकाश भी गाये,
प्रसून ऐसी सुरभि बाँटेगी बेशक आज की ग़ज़लें !

✦ 卐 ✦

(३४)

उदासी आँख में भर लो अँधेरा फिर घना होगा,
अभी तो जुल्म की आँधी का सीधा सामना होगा !

हजारों स्वप्न जनमेंगे मगर दम तोड़ ही देंगे,
अलग है बात ये मधुमास कलियों ने जना होगा !

मकानों से धुआँ निकलेगा ऐसी आग भड़केगी,
शहर के राजपथ पर घूमना सबको मना होगा !

हवा भी विषबुझी छूरी बनेगी देखियेगा ही,
विवशता भी यही होगी इसे स्वीकारना होगा !

प्रसूनों की विजय होगी बलायें शीश पर ले लो,
कवच काँटों का अब तो हर किसी को धारना होगा !

करो ये तय कि हारेंगे नहीं रण जीत ही लेंगे,
इरादे यदि नहीं मजबूत होंगे हारना होगा !

प्रसून ऐसा करो पानी न हो पाये लहू अपना,
लहू पानी अगर हो जायेगा मन मारना होगा !

◆ 卐 ◆

(३५)

सत्य की अभिव्यक्ति से घबरा गया मन,
पंख सूरज के उगे भाले गये बन !

बाँध लो रुमाल में यह पुण्य सारे,
फिर समय का संत बाँचे गूढ़ दर्शन !

भावना का जल सपेरों ने पिया है,
तक्षकों का क्षीर से कर आचमन !

है गलत इंसान कहते हो इन्हें तुम,
मानवोचित है नहीं इनका चलन !

रोशनी के साथ भागा जा रहा है,
बाँटकर अपना शहर उजले कफन !

◆ 卐 ◆

(३६)

आगे जाकर खड़े हो गये जो ऊँची दूकानों के,
वे समझे हम ही साँचे हैं फौलादी इंसानों के !

जिनके थे व्यक्तित्व हिमालय और भावना सागर थी,
वे सब कंकड़ पत्थर निकले पथरीली चट्टानों के !

महज हवा के झोंके से जो उड़ जाते हैं कोसों दूर,
वे कैसे बर्दाश्त कर सकेंगे धक्के तूफानों के !

अभिशापित होकर जीवन की प्रतिमायें जो बिखर गईं,
कभी-कभी उन पर भी अक्षत पड़ जाते वरदानों के !

◆ 卐 ◆

ओठों पे आये मंद मंद हास की तरह,
घर में तुम्हारे आयेंगे मधुमास की तरह !

हमको भले ही देखो आज शक की नजर से,
हमको पढ़ोगे तुम कभी इतिहास की तरह!

गरदन झुकाने का नहीं मतलब कि कुचल दो,
पाओगे हमको एक दिन आकाश की तरह!

देखोगे राह तुम कि बरसें मेघ बन के हम,
माटी की बिलबिलाती हुई प्यास की तरह!

आयेंगे प्राण फूँकने मुर्दा शरीर में हम,
पीने गरल समाज का अविनाश की तरह ?

दिखते हैं हरी दूब भले नोच लो अभी,
उभरेगें फिर कभी नुकीली घास की तरह!

पथरायी आँखों से न हमें देखना प्रसून,
सूरज़ हैं हमको मत निगलना ग्रास की तरह!

कवि-व्यक्तित्व- एक विहंगम दृष्टि

लखनऊ में जन्मे डॉ अजय प्रसून ने अपने जीवन के तीस बसन्त ही व्यतीत करके हिन्दी काव्य-जगत में सुरभि बिखेर कर अपना अजय प्रसून नाम सार्थक कर लिया है। कर्मठ इतने कि कार्यालय में कार्यरत रहने तथा एक होम्योपैथिक चिकित्सक होने के नाते बी. एम. एस. डिग्री का सामयिक उपयोग करने पर भी साहित्य-साधना का समय निकाल लेते हैं और युवा कवियों में अच्छी ख्याति भी प्राप्त कर ली है। आपके पिता श्री सरोज कुमार द्विवेदी पी.सी.यू. लखनऊ में संयुक्त सचिव एवं आपके बड़े भाई श्री विनय कुमार द्विवेदी लखनऊ के प्रतिष्ठित वकील हैं।

लगभग पाँच वर्ष पूर्व एक त्रैमासिक कविता प्रधान पत्रिका 'ताम्रपर्णी' का प्रकाशन एवं सम्पादन कर आपने अपनी प्रतिभा एवं कर्मठता का अच्छा परिचय दिया था, भले ही अर्थाभाव एवं एकाकी प्रयास के कारण अधिक दिनों न चला पाये। 'ताम्रपर्णी' के प्रकाशन के साथ ही सन् १९७९ में बालगीत संकलन 'गाओ गीत सुनाओ गीत' पर उ० प्र० शासन द्वारा रुपये १००० का अनुशंसा पुरस्कार प्राप्त किया। २८ फरवरी १९८० को राष्ट्रकवि श्री सोहन लाल द्विवेदी जी की इच्छा पर इन्हें नगर के गांधी भवन में सम्मानित किया गया एवं अभिनन्दन पत्र भेंट किया गया।

इसके अतिरिक्त डॉ. अजय प्रसून का दहेज प्रथा पर 'युग के आँसू' एक खण्ड काव्य तथा बालकृति 'बच्चो शिष्टाचार न भूलो' भी प्रकाशित हो चुके हैं। 'महानगर के बीच' उनका हिन्दी ग़ज़लों का नवीनतम संकलन है आप आकाशवाणी लखनऊ द्वारा संगीत बद्ध गीतों हेतु मान्यता प्राप्त कवि हैं तथा आकाशवाणी एवं दूर-दर्शन द्वारा समय-समय आपके कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं। देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में आपकी कवितायें प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी में अनागत काव्य विधा को अग्रसारित करने का श्रेय आपको ही है जिसकी प्रशंसा वरिष्ठतम साहित्यकारों ने की है। इसी श्रृंखला में हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवयित्री डॉ. कुसुमशाह ने भी अपना अनागत काव्य सग्रह 'नींदें कहाँ गईं' अनागत विधाको भेंट किया। इस समय डॉ. अजय प्रसून अनागत साहित्य के प्रसार में व्यस्त हैं। माँ उन्हें कृतकृत्य करें। मेरी मंगल कामनायें।

रमेश चन्द्र अवस्थी
अध्यक्ष—मंगलाचरण
४४, कैंट रोड, लखनऊ

मुख पृष्ठ के चित्रकार — श्री अरुण कान्त टन्डन

मुद्रक : काका प्रिन्टिंग प्रेस, लखनऊ दूरभाष : 33153